International Journal of Home Science 2021; 7(2): 75-77

International Journal of Home Science

ISSN: 2395-7476
IJHS 2021; 7(2): 75-77
© 2021 IJHS
www.homesciencejournal.com
Received: 04-04-2021
Accepted: 06-05-2021

प्रीति रानी
शोध छात्रा गृह विज्ञान विभाग श्री वेंकेटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. पूजा त्यागी
असिस्टेंट प्रोफेसर श्री वेंकटेवश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. श्रीकांत शर्मा
प्राचार्य, अर्शदीप कॉलेज, नागल, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
प्रीति रानी
शोध छात्रा गृह विज्ञान विभाग श्री वेंकेटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश, भारत

हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रकार और शुरूआत

प्रीति रानी, डॉ. पूजा त्यागी और डॉ. श्रीकांत शर्मा

सारांश
विवाह एक सार्वभौमिक सामाजिक संस्था है, जो विश्व के प्रत्येक भाग भिन्न–भिन्न रूपों में पाई जाती है। समाज में परिवार निर्माण करने एवं व्यक्ति को समाज में एक विशिष्ट सामाजिक प्रस्थिति की प्राप्ति हेतु विवाह को आधारभूत इकाई माना गया है। विश्व के प्रत्येक भाग में चाहे वह आधुनिक हो या प्राचीन, शहरी हो या ग्रामीण, सभ्य हो या जनजातीय, विवाह विभिन्न रूपों में पाया जाता है। हिन्दुओं में विवाह को सामान्यतः एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया जाता है। भारतीय समाज में प्रत्येक हिन्दू व्यक्ति के लिए विवाह एक अनिवार्य शर्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हिन्दुओं में पुरूषार्थ में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य माना गया है जिनकी पूर्ति विवाह द्वारा ही सम्भव है। हमारे समाज में अविवाहित व्यक्ति को अपवित्र माना गया है तथा उसे धार्मिक दृष्टि से अपूर्ण मानकर विभिन्न संस्करों में भाग लेने योग्य नहीं माना गया है। इस शोध पत्र में हिन्दुओं में विवाह के स्वरूप, विवाह के प्रकार और उसकी शुरूआत का अध्ययन किया गया है।

कुटशब्दः हिन्दू विवाह, हिन्दू धर्म, मोक्ष व पुरूषार्थ

प्रस्तावना
विवाह का शाब्दिक अर्थ है, 'उद्वह' अर्थात वधू को वर के घर ले जाना। [1] विवाह को परिभाषित करते हुए लूसी मेयर लिखती है ''विवाह की परिभाषा यह है कि वह स्त्री–पुरूष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा बच्चा माता–पिता की वैध सन्तान माना जाय।'' [2] बोगार्डस के अनुसार, ''विवाह स्त्री और पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की एक संस्था है।'' [3]

हिन्दू विवाह को हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों में से एक संस्कार माना गया है। विवाह = वि+वाह, अतः इसका शाब्दिक अर्थ है – विशेष रूप से (उत्तरदायित्व का) वहन करना। पाणिग्रहण संस्कार को सामान्य रूप से हिन्दू विवाह के नाम से जाना जाता है। अन्य धर्मों में विवाह पति और पत्नी के बीच एक प्रकार का करार होता है जिसे कि विशेष परिस्थितियों में तोड़ा भी जा सकता है परंतु हिन्दू विवाह पति और पत्नी के बीच जन्म–जन्मांतरों का सम्बंध होता है जिसे कि किसी भी परिस्थिति में नहीं तोड़ा जा सकता। अग्नि के सात फेरे लेकर और ध्रुव तारा को साक्षी मान कर दो तन, मन तथा आत्मा एक पवित्र बंधन में बंध जाते हैं। हिन्दू विवाह में पति और पत्नी के बीच शारीरिक संम्बंध से अधिक आत्मिक संम्बंध होता है और इस संम्बंध को अत्यंत पवित्र माना गया है।

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार मानव जीवन को चार आश्रमों (ब्रम्हचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम तथा वानप्रस्थ आश्रम) में विभक्त किया गया है और गृहस्थ आश्रम के लिये पाणिग्रहण संस्कार अर्थात् विवाह नितांत आवश्यक है। हिन्दू विवाह में शारीरिक संम्बंध केवल वंश वृद्धि के उद्देश्य से ही होता है। शतपथ ब्राह्मण ने भी लिखा गया है कि "पत्नी निश्चित रूप से पति का आदर्श है। अतः जब तक पुरुष अपनी पत्नी प्राप्त नहीं करता एवं संतान उत्पन्न नहीं करता तब तक वह पूर्ण नहीं होता।"[4]

हिन्दू विवाह की शुरूआत
मानव समाज में विवाह की संस्था के प्रादुर्भाव के बारे में 19वीं शताब्दी में वेखोफन (1815–80 ई.), मोर्गन (1818–81 ई.) तथा मैकलीनान (1827–81) ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर इस मत का प्रतिपादन किया था कि मानव समाज की आदिम अवस्था में विवाह का कोई बंधन नहीं था, सब नर–नारियों को यथेच्छ कामसुख का अधिकार था। महाभारत ख्2, में पांडु ने अपनी पत्नी कुंती को नियोग के लिए प्रेरित करते हुए कहा है कि पुराने जमाने में विवाह की कोई प्रथा न थी, स्त्री पुरुषों को यौन संबंध करने की पूरी स्वतंत्रता थी। कहा जाता है, भारत में श्वेतकेतु ने सर्वप्रथम विवाह की मर्यादा स्थापित की। चीन, मिस्र और यूनान के प्राचीन साहित्य में भी कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं। इनके आधार पर लार्ड एवबरी, फिसोन, हाविट, टेलर, स्पेंसर, जिलनकोव लेवस्की, लिय्यर्ट और शुर्त्स आदि पश्चिमी विद्वानों ने विवाह की आदिम दशा कामचार (प्रामिसकुइटी) की अवस्था मानी।

क्रोपाटकिन व्लाख और ब्राफाल्ट ने प्रतिपादित किया कि प्रारंभिक कामचार की दशा के बाद बहुभार्यता (पोलीजिनी) या अनेक पत्नियाँ रखने की प्रथा विकसित हुई और इसके बाद अंत में एक ही नारी के साथ पाणिग्रहण करने (मोनोगेमी) का नियम प्रचलित हुआ।

किंतु चार्ल्स डार्विन ने प्राणिशास्त्र के आधार पर विवाह के आदिम रूप की इस कल्पना का प्रबल खंडन किया, वैस्टरमार्क, लौंग ग्रास तथा क्राले प्रभृति समाजशास्त्रियों ने इस मत की पुष्टि की। प्रसिद्ध समाजशास्त्री रिर्क्ख ने लिखा है कि हमारे पास इस कल्पना का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि भूतकाल में कभी कामचार की सामान्य दशा प्रचलित थी। विवाह की संस्था मानव समाज में जीवशास्त्रीय आवश्यकताओं से उत्पन्न हुई है। इसका मूल कारण अपनी जाति को सुरक्षित बनाए रखने की चिंता है। यदि पुरुष यौन संबंध के बाद पृथक् हो जाए, गर्भावस्था में पत्नी की देखभाल न की जाए, संतान उत्पन्न होने पर उसके समर्थ एवं बड़ा होने तक उसका पोषण न किया जाए तो मानव जाति का अवश्यमेव उन्मूलन हो जाएगा। अतः आत्मसंरक्षण की दृष्टि से विवाह की संस्था की उत्पत्ति हुई है। यह केवल मानव समाज में ही नहीं, अपितु मनुष्य के पूर्वज समझे जाने वाले गोरिल्ला, चिंपाजी आदि में भी पाई जाती हैं। अतः कामचार से विवाह के प्रादुर्भाव का मत अप्रामाणिक और अमान्य है। वेस्टरमार्क ने लिखा है कि "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है। जो प्रथा या कानून के द्वारा स्वीकृत होता है तथा जिसमें विवाह से सम्बन्धित दोनों पक्षों और उन से उत्पन्न होने वाले बच्चों के अधिकारों व कर्तव्यों का समावेश होता है।" [5]

हिन्दू विवाह के प्रकार

शास्त्रों के अनुसार विवाह आठ प्रकार के होते हैं। विवाह के ये प्रकार हैं– ब्रह्म, दैव, आर्श, प्राजापत्य, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच। उक्त आठ विवाह में से ब्रह्म विवाह को ही मान्यता दी गई है बाकि विवाह को धर्म के सम्मत नहीं माना गया है। हालांकि इसमें देव विवाह को भी प्राचीन काल में मान्यता प्राप्त थी। प्राजापत्य, असुर, गंधर्व, राक्षस और पिशाच विवाह को बेहद अशुभ माना जाता है।

हिन्दू विवाह भोगलिप्सा का साधन नहीं, एक धार्मिक–संस्कार है। संस्कार से अंतःशुद्धि होती है और शुद्ध अंतःकरण में ही दांपत्य जीवन सुखमय व्यतीत हो पाता है। 16 संस्कारों में ब्रह्म विवाह को ही शामिल किया गया है।

1. **ब्रह्म विवाहः** दोनों पक्ष की सहमति से समान वर्ग के सुयोज्ञ वर से कन्या की इच्छानुसार विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है। इस विवाह में वैदिक रीति और नियम का पालन किया जाता है। यही उत्तम विवाह है।
2. **देव विवाहः** किसी सेवा धार्मिक कार्य या उद्येश्य के हेतु या मूल्य के रूप में अपनी कन्या को किसी विशेष वर को दे देना 'दैव विवाह' कहलाता है। लेकिन इसमें कन्या की इच्छा की अनदेखी नहीं की जा सकती। यह मध्यम विवाह है। ए. एस. अल्तेकर के मतानुसार, 'देव–विवाह वैदिक यज्ञों के साथ ही लुप्त हो गए।'' [6]
3. **आर्श विवाहः** कन्या–पक्ष वालों को कन्या का मूल्य देकर (सामान्यतः गौदान करके) कन्या से विवाह कर लेना 'अर्श विवाह' कहलाता है। यह मध्यम विवाह है।
4. **प्रजापत्य विवाहः** कन्या की सहमति के बिना माता–पिता द्वारा उसका विवाह अभिजात्य वर्ग (धनवान और प्रतिष्ठित) के वर से कर देना 'प्रजापत्य विवाह' कहलाता है।
5. **गंधर्व विवाहः** इस विवाह का वर्तमान स्वरूप है प्रेम विवाह। परिवार वालों की सहमति के बिना वर और कन्या का बिना किसी रीति–रिवाज के आपस में विवाह कर लेना 'गंधर्व विवाह' कहलाता है। वर्तमान में यह मात्र यौन आकर्षण और धन तृप्ति हेतु किया जाता है, लेकिन इसका नाम प्रेम विवाह दे दिया जाता है। इसका नया स्वरूप लिव इन रिलेशनशिप भी माना जाता है।
6. **असुर विवाहः** कन्या को खरीद कर (आर्थिक रूप से) विवाह कर लेना 'असुर विवाह' कहलाता है।
7. **राक्षस विवाहः** कन्या की सहमति के बिना उसका अपहरण करके जबरदस्ती विवाह कर लेना 'राक्षस विवाह' कहलाता है।
8. **पैशाच विवाहः** कन्या की मदहोशी (गहन निद्रा, मानसिक दुर्बलता आदि) का लाभ उठा कर उससे शारीरिक संबंध बना लेना और उससे विवाह करना 'पैशाच विवाह' कहलाता है।

ब्रह्म विवाह

हिन्दू धर्मानुसार विवाह एक ऐसा कर्म या संस्कार है जिसे बहुत ही सोच–समझ और समझदारी से किए जाने की आवश्यकता है। दूर–दूर तक रिश्तों की छानबिन किए जाने की जरूरत है। जब दोनों ही पक्ष सभी तरह से संतुष्ट हो जाते हैं तभी इस विवाह को किए जाने के लिए शुभ मुहूर्त निकाला जाता है। इसके बाद वैदिक पंडितों के माध्यम से विशेष व्यवस्था, देवी पूजा, वर वरण तिलक, हरिद्रालेप, द्वार पूजा, मंगलाष्टकं, हस्तपीतकरण, मर्यादाकरण, पाणिग्रहण, ग्रंथिबन्धन, प्रतिज्ञाएं, प्रायश्चित, शिलारोहण, सप्तपदी, शपथ आश्वासन आदि रीतियों को पूर्ण किया जाता है।

दोनों पक्ष की सहमति से समान वर्ग के सुयोज्ञ वर से कन्या का विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है। सामान्यतः इस विवाह में वैदिक रीति और नियम का पालन किया जाता है। इस विवाह में कुंली मिलान को उचित रीति से देख लिया जाता है। मांगलिक दोष मात्र 20 प्रतिशत ही बाधक बन सकता है। वह भी तब जब अष्टमेश एवं द्वादशेश दोनों के अष्टम एवं द्वादश भाव में 5 या इससे अधिक अंक पाते हैं। मांगलिक के अलावा यदि अन्य मामलों में कुंडली मिलती है तो विवाह सुनिश्चित कर दिया जाता है। अतः मंगल दोष कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं होती है।

वर द्वारा मर्यादा स्वीकारोक्ति के बाद कन्या अपना हाथ वर के हाथ में सौंपे और वर अपना हाथ कन्या के हाथ में सौंप दे। इस प्रकार दोनों एक दूसरे का पाणिग्रहण करते हैं। यह क्रिया हाथ से हाथ मिलाने जैसी होती है। मानों एक दूसरे को पकड़कर सहारा दे रहे हों। कन्यादान की तरह यह वर–दान की क्रिया तो नहीं होती, फिर भी उस अवसर पर वर की भावना भी ठीक वैसी होनी चाहिए, जैसी कि कन्या को अपना हाथ सौंपते समय होती है। वर भी यह अनुभव करें कि उसने अपने व्यक्तित्व का अपनी इच्छा, आकांक्षा एवं गतिविधियों के संचालन का केन्द्र इस वधू को बना दिया और अपना हाथ भी सौंप दिया। दोनों एक दूसरे को आगे बढ़ाने के लिए एक दूसरे का हाथ जब भावनापूर्वक समाज के सम्मुख पकड़ लें, तो समझना चाहिए कि विवाह का प्रयोजन पूरा हो गया।

मनुष्य के ऊपर देवऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण– ये तीन ऋण होते हैं। यज्ञ–यागादि से देवऋण, स्वाध्याय से ऋषिगण तथा उचित रीति से ब्रह्म विवाह करके पितरों के श्राद्ध–तर्पण के योग्य धार्मिक एवं सदाचारी पुत्र उत्पन्न करके पितृऋण का परिशोधन होता है। इस प्रकार पितरों की सेवा तथा सदधर्म का पालन करने की परंपरा सुरक्षित रखने के लिए संतान उत्पन्न करना विवाह का परम उद्देश्य है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म में ब्रह्म विवाह को एक पवित्र–संस्कार के रूप में मान्यता दी गयी है।

विवाह का भविष्य

प्लेटो के समय से विचारक विवाह–प्रथा की समाप्ति की तथा राज्य द्वारा बच्चों के पालन की कल्पना कर रहे हैं। वर्तमान समय के औद्योगिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तनों से तथा पश्चिमी देशों में तलाकों की बढ़ती हुई भयावह संख्या के आधार पर विवाह की संस्था के लोप की भविष्यवाणी करने वालों की कमी नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस समय विवाह के परंपरागत स्वरूपों में कई कारणों से बड़े परिवर्तन आ रहे हैं। विवाह को धार्मिक बंधन के स्थान पर कानूनी बंधन तथा पति–पत्नी का निजी मामला मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। औद्योगिक क्रांति और शिक्षा के प्रसार से स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बन रही हैं। पहले उनके सुखमय जीवनयापन का एकमात्र साधन विवाह था, अब ऐसी

स्थिति नहीं रही। विवाह और तलाक के नवीन कानून दांपत्य अधिकारों में नर–नारी के अधिकारों को समान बना रहे हैं। धर्म के प्रति आस्था में शिथिलता और गर्भनिरोध के साधनों के आविष्कार ने विवाह विषयक पुरानी मान्यताओं को, प्राग्वैवाहिक सतीत्व और पवित्रता को गहरा धक्का पहुंचाया है। किंतु ये सब परिवर्तन होते हुए भी भविष्य में विवाह प्रथा के बने रहने का प्रबल कारण यह है कि इससे कुछ ऐसे प्रयोजन पूरे होते हैं, जो किसी अन्य साधन या संस्था से नहीं हो सकते। पहला प्रयोजन वंश वृद्धि का है। यद्यपि विज्ञान ने कृत्रिम गर्भाधान का आविष्कार किया है किंतु कृत्रिम रूप से शिशुओं का प्रयोगशालाओं में उत्पादन और विकास संभव प्रतीत नहीं होता। दूसरा प्रयोजन संतान का पालन है, राज्य और समाज शिशुशालाओं और बालोद्यानों का कितना ही विकास कर ले, उनमें इनके सर्वांगीण समुचित विकास की वैसी व्यवस्था संभव नहीं, जैसी विवाह एवं परिवार की संस्था में होती है। तीसरा प्रयोजन सच्चे दांपत्य प्रेम और सुख प्राप्ति का है। यह भी विवाह के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से संभव नहीं। इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिए भविष्य में विवाह एक महत्त्वपूर्ण संस्था बनी रहेगी, भले ही उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहें।

उपसंहार

हिन्दू धर्म में प्राचीन धर्मशास्त्रों में विवाह को एक अनिवार्य धार्मिक रीति माना गया है। मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में विभक्त है – ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन सभी आश्रमों में ग्रहस्थ आश्रम को सबसे महत्वपूर्ण व आधारभूत आश्रम के रूप में माना गया है। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह विवाह करके ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश करे।

संदर्भ सूची

1. उद्वाहतत्व–तेन भर्यात्व सम्पादक ग्रहण विवाहः। मनुस्मृति, 3/20।
2. लूसी मेयर, सामाजिक नृ–विज्ञान की भूमिका, हिन्दी अनुवाद, पृ० 90।
3. Marriage is an institution admitting men and women to Famaily life B.S. Bogardus, Sociology, 79.
4. शतपथ ब्राह्मण।
5. Wester mark. The history of human marriage 26.
6. Altekar AS: op. cit, 46-47.